A First EPQRST Journal-www.jahnavisanskritejournal.com, Issue-17th, Vol.-V, 14.1.14

ISSN 976-8645

औपनिषदिक तत्त्वज्ञान की वर्तमान उपादेयता

प्रियंका उपाध्याय

कूटशब्द *आत्मसाक्षात्कार, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म, अद्वैत सिद्धि, प्रज्ञानं ब्रह्म, औपनिषदिक महावाक्य।*

आध्यात्मिक और नैतिक साधना का समस्त प्रक्रम मनुष्य और प्रकृति के पीछे निविष्ट आध्यात्मिक तत्त्व के बोध की ओर अग्रसर करता है। इन्द्रियों द्वारा हमें भिन्नत्व का बोध होता है किन्तु आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा हमें विविधताओं में एकता का बोध होता है। मानव आज सङ् क्रान्ति के जिस पथ पर विद्यमान है, उसके लिये ऐसे दर्शन की आवश्यकता है जो पूर्ण, यथार्थ और वैज्ञानिक हो, श्रेष्ठ संस्कृति का विकास कर सके, समाज को आदर्श की प्रेरणा दे सके, ऋत पालन के प्रति सचेष्ट कर सके, सत्य के पालन हेतु सामर्थ्य दे सके, भद्र और अभद्र में विवेक बुद्धि जाग्रत कर सके, मुक्ति की चिर सञ्चित अभिलाषा को पूर्ण कर सके, अतः उपनिषदों का धर्म एवं दर्शन इन सभी के लिये पूर्णतः समर्थ है। उपनिषदों में अन्तर्जगत् एवं बाह्यजगत् के ज्ञान-विज्ञान का सुव्यवस्थित संश्लेषण प्रस्तु किया गया है यही कारण है कि उपनिषदों का सन्देश देश-काल एवं व्यक्ति की सीमा से इतर आज भी प्रासंगिक है। मनुष्य जिस प्रकार सुख, समृद्धि और सुरक्षा प्राप्त करने के लिये भौतिक नियमों का अनुसंधान करता है, उसी प्रकार अभ्युदय और रनिःश्रेयस को प्राप्त करने के लिये औपनिषदिक मन्त्रों में अनूस्यूत मूल्यों को जीवन में धारण करता है। इनके अनुशीलन और अनुपालन से पारस्परिक विरोध, द्वन्द्व या संघर्ष समाप्त हो जाता है। वैश्विक शान्ति तथा कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है। उपनिषदों ने एक संतुलित एवं समग्र दृष्टि प्रदान की है जिससे मनुष्य व्यष्टि से समष्टि की ओर, लौकिक चिन्तन से अलौकिक कीओर तथा मानवता से दिव्यता की ओर अग्रसर हो सके क्योंकि वर्तमान में ऐसा दृष्टि बोध विकसित करना आवश्यक है। आज सर्वत्र द्वैधीभाव व्याप्त है किन्तु

ISSN 976-8645

सार्वभौमिक दृष्टि विकसित होने पर अपनी ही आत्मा के दर्शन होते हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से हम सबएक हैं। सभी में एक तत्त्व की सत्ता विद्यमान है। उपनिषदों में समस्त विश्व के ऊपरी सतह पर भेद व्याप्त है, उसी को समाप्त करने की आवश्यकता है। यह तभी संभव है जब व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार द्वारा स्वयं को परमसत्ता का अंश स्वीकार करे। ऐसा ज्ञान होने पर प्रत्येक व्यक्ति समस्त ब्रह्माण्ड के प्रत्येक तत्त्व के साथ आत्मवत् व्यवहार करेगा और समस्याएं स्वतः समाप्त हो जायेगी। अतः ऐसे समय में संस्कृति के मूलाधार एवं आध्यात्मिक ज्ञान के धरोहर उपनिषदों का अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है। क्यो औपनिषद मंत्र मनुष्य के दृष्टिकोण परिवर्तन में सहायक सिद्ध हो सकते हैं ? क्या उपनिषदों के मंत्र पारिस्थितिकीय समस्याओं के समाधान में सक्षम हैं ? क्या औपनिषदिक मंत्र समाज में अद्वैत भावना के प्रतिस्थापन में समर्थ हैं ? क्या औपनिषदिक मूल्य पथभ्रमित मानव को सन्मार्ग पर प्रेरित कर सकते हैं ? क्या औपनिषदिक ज्ञान मानव को व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाने में समर्थ हैं ? क्या उपनिषद् जो ब्रह्मविद्या या अध्यात्म-ज्ञान तथा दर्शन के स्रोत हैं, वर्तमान समय की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं ? इन सभी प्रश्नों का वैध एवं विश्वसनीय उत्तर खोजने का प्रयास शोध-पत्र में किया गया है जो वर्तमान समय में प्रासंगिक हो सकता है। शोध-पत्र का उद्देश्य औपनिषदिक तत्त्वज्ञान के माध्यम से वर्तमान युग की समस्याओं को समाप्त करना है।

उपनिषद् भारतीय आध्यात्मिकता के प्राचीनतम प्रमाण हैं जो चिन्तन की अपूर्व विधाओं, अद्वितीय रहस्यों को प्रकाश में लाकर विश्व के समक्ष उद्घाटित करते हैं। दार्शनिक विचारधारा को देखने और परखने के लिय उपनिषद् ऐसे गावक्ष हैं जिनमें से ज्ञान, कर्म और भक्ति की तथा सत्, चित् और आनन्द की रश्यिमां सतत प्रवाहित रहती हैं। उपनिषद् माव जीवन के गूढ़तम तथ्यों को प्रकाशित कर आत्मिक शान्ति देने वाले शास्त्र हैं तथा मनुष्य के ज्ञानपथ और जीवनपथ दोनों को पाथेय प्रदान कर ब्रह्मांश से आलोकित करने वाले अनुपम साहित्यांश है। युग सञ्चेतना के प्राणदायकत्त्वों को स्वयंमें निहित किए उपनिषद् जीवन निर्माण के अनुपम सामर्थ्य से युक्त हैं। मनुष्य के अन्दर जो कुछ अन्धकारमय है उसे आलोकित करने का और जो कुछ निर्बल है उसे सबल बनाने का एकमात्र उपाय उपनिषद् ही हैं। आध्यात्मिक और नैतिक साधना का समस्त प्रकम मनुष्य और

ISSN 976-8645

प्रकृति के पीछे निविष्ट आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा हमें विविधताओं में एकता का बोध होता है।

वर्तमान युग खतरों के अवसरों से परिपूर्ण है। प्रौद्योगिकी, उद्योगों, प्राकृतिक सम्पदा के दोहन, नगरीकरण, जनसंख्या के विस्फोट और तत्जन्य प्रदूषण के कारण मनुष्य की शारीरिक और मानसिक समायोजन की क्षमता बिगड़ती जा रही है। इसी कारण पारिस्थितिकी तंत्र में असन्तुलन बढ़ता जा रहा है। पृथिवी की जीवनदायी शक्ति समाप्त होती जा रही है। मनुष्य ने भूमि, जल, वायु और प्रकृति के संसाधनों का ऐसा दुष्प्रयोग किया है कि उसका प्रभाव पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों तथा अन्य जीवधारियों पर भी दृष्टिगोचर होता है। आज मानवीय क्रियाकलापों, नगरीकरण, औद्योगिकीकरण और रासायनिक प्रयोगों से पर्यावरण में जो असन्तुलन हो रहा है, उससे मनुष्य के मानसिक व्यवहार पर भी दूरगामी प्रभाव हो रहे हैं। वनों का विनाश किया जा रहा है, पशु-पक्षियों की बहुत सी प्रजातियाँ नष्ट हो चुकी हैं। उपयोगिता के नशे में जीवन की संवेदना और सौन्दर्य बोध समाप्त होता जा रहा है। मानवीय संवेदनाओं के अभाव में भय, असुरक्षा की स्थिति, धनी-निर्धन के बीच का भेद बढ़ता जा रहा है। भ्रष्टाचार, नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन, हिंसा-आतंक, शारीरिक-मानसिक समस्याओं से मानव जीवन आक्रान्त है। ऐसे अनेक तत्त्व है जिनसे व्यक्तिगत एवं वैश्विक स्तर पर जीवन नष्ट होता जा रहा है। मनुष्य सुख-शान्ति की खोज में भोगों की मरीचिका में भटक रहा है। सत्ता-संपत्ति की दौड़ में मनुष्य वास्तविक मार्ग को विस्मृत कर चुका है। अत: कुंठित तथा अवसादग्रस्त मुष्य, विघटित परिवार तथा विशृंखलित समाज में परिवर्तन करने के लिये एक नवीन विचारधार अत्यन्त आवश्यक है। आज विज्ञान में प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की बात की जाती है अत: ऐसे समय में संस्कृति के मूलाधार एवं आध्यात्मिक ज्ञान के धरोहर उपनिषदों का अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

मनुष्य जब सृष्टि विज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान में समन्वय करके संसार में अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है तब उसका ध्यान विश्वात्मा की ओर जाता है और व्यक्ति विश्वात्मा को प्राप्त करने के लिए तप करना प्रारम्भ करता है। तप के द्वारा आत्मसाक्षात्काररूपी फल प्राप्त होता है। आत्मसाक्षात्कार वर्तमान समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है, क्योंकि उससे द्वैधीभाव समाप्त हो जाता है और अद्वैत की सिद्धि होती है। यह अद्वैत भावना मानव मन में ही नहीं, प्राणिमात्र में एक आत्मतत्त्व के दर्शन कराती है। इस अनुभूति से अपने पराये का भेद समाप्त हो जाता है तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को बल मिलता है। उपनिषदों में जीवन की क्षुद्रताओं और तुच्छताओं से

ISSN 976-8645

इतर अनन्त, अनुपम, सर्वाधार, सर्वव्यापक एवं सर्वसमर्थ ब्रह्म की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है जिसके ज्ञान से संसार में सुख और शान्ति संभव है। ईशावास्योपनिषद् में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहा गया है–

''यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगप्सते।।
यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यामैवाभूद्विजानतः।
तत्र को महोः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।''[1]

जो सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मा को और परमात्मा में सब को देखता है, किसी से घृणा नहीं करता और न ही किसी की निन्दा–स्तुति करता हैक्योंकि ईश्वर के ऐसे रूप को जानने वाला 'एकत्वमनुपश्यद्' योगी सब प्राणियों में एकता का अनुभव करता है। ईशावास्योपनिषद् में सृष्टि के मूल में महासूर्य है जिससे ब्रह्माण्ड को प्रकाश मिलता है एवं उसकी ऊर्जा कण–कण में समाकर सबका पोषण करती है–

''पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह। तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।।''[2]

कर्मयोगी मनुष्य अपने भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान को समन्वित करने के बाद दृश्यमान जगत् का पोषण करने वाले सूर्य से किरणें समेटने के लिये प्रार्थना करता है ताकि वह सूर्य को भी प्रकाशित करने वाले महासूर्य के दर्शन कर सके। भौतिक जगत् के लिये जिस प्रकार ब्रह्माण्ड के दृश्यमान सूर्य है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा के लिये विश्वात्मा रूप महासूर्य विद्यमान है। दृश्यमान सूर्य जगत् एवं जीवन का प्राणतत्त्व है, इसी की सहायता से हरे पौधे भूमिगत जल एवं कार्बनडाइआक्साइड से आवश्यक खाद्य बनाते हैं, जिससे जीवों का पृथिवी पर अस्तित्व संभव है। मनुषय खाद्य पदार्थों के माध्यम से सूर्य की ऊर्जा ग्रहण करते हैं। कोयले तथा तेल में विद्यमान सूर्य की ऊर्जा को जलाते हैं, ऊन और कपास के द्वारा सूर्य की ऊर्जा को धारण हैं। सूर्य की ऊर्जा युगों से हवा और जल में मिलकर षड्ऋतुओं का निर्माण कर रही है। मनुष्य जीवन पर्यन्त ब्रह्म के प्रतीक रूप में सूर्य के दर्शन करता है जो सृष्टि जगत् में सम्पूर्ण प्रकाश एवं जीवन का स्रोत है। इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से हम सब एक हैं। सभी में एक तत्त्व की सत्ता विद्यमान है। उपनिषदों में समस्त विश्व, ब्रह्माण्ड, खगोल और पार्थिव शरीर की सारभूत आध्यात्मिक एकता के बल पर दिया गया है–किन्तु विश्व के ऊपरी सतह पर भेद व्याप्त है, उसी को समाप्त करने की आवश्यकता है। यह तभीसंभव है जब व्यक्ति

ISSN 976-8645

आत्मसाक्षात्कार द्वारा स्वयं को परमसत्ता का अंश स्वीकार करे। ऐसा ज्ञान होने पर प्रत्येक व्यक्ति समस्त ब्रह्माण्ड के प्रत्येक तत्त्व के साथ आत्मवत् व्यवहार करेगा और समस्याएं स्वत: समाप्त हो जायेगी।

उपनिषदों की अन्वेषक दृष्टि मानव-हित की कामना से ओतप्रोत है। उपनिषदों के तत्त्वद्रष्टा ऋषियों ने ब्रह्म एवं ब्रह्माण्ड में एकत्व को अनुभूत किया है। जिस प्रकार सूर्य का तेज ब्रह्माण्ड के कण-कण में समा जाता है उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ब्रह्म के तेज से परिव्याप्त है- **''ब्रह्मैवेदममृतं.....विश्वमिदम् वरिष्ठम्''**[3] यह सम्पूर्ण विश्व में जो कुछ भी वरिष्ठ है, वह सब ब्रह्म ही है। **''इदं सर्वं यदयमात्मा''**[4] यह सब आत्मा ही है। **''तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम-यमात्मा ब्रह्म सर्वानुभू:''**[5] इस ब्रह्म का न अग्र है, न पश्च है, न अन्तर है, न बाह्य है, यह आत्मा ही ब्रह्म हैजो सबका अनुभवकर्ता है। ऋषियों द्वारा अनुभूत एकत्व से अथवा सारे ब्रह्माण्ड को सम्पूर्णता में देखने पर जीव जगत् से सम्बन्धित उन्हें जो निष्कर्ष प्राप्त हुए वे आज भी प्रासंगिक है। वर्तमान में यदि मानव बह्म और ब्रह्माण्ड में एकत्व को अनुभूत करते हुए जगत् में व्यवहार करे तो निश्चय ही पारिस्थितिकीय असन्तुलन की समस्या का समाधान संभव हो सकेगा। व्यक्ति एवं समाज का आचरण प्रत्येक तत्त्व के प्रति सर्वात्मभाव से परिपूर्ण होगा।

उपनिषदों में सृष्टि के साथ मनुष्य के अन्त: सम्बन्ध का प्रतिपादन करते हुए जिस प्रकार सभी प्राणियों में ब्रह्म को अनुस्यूत माना है, उसी प्रकार ब्रह्म और ब्रह्माण्ड में भी उन्होंने एकत्व को समझाने का प्रयास किया है। मुण्डकोपनिषद् में ऋषि ने कहा है-

''यथोर्णनाभि: सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधय: सम्भवन्ति
यथा सत: पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।।''[6]

उर्णनाभि (मकड़ी) जिस प्रकार अपने शरीर से अभिन्न तन्तुओं को बाहर फैलाती है और समाहित भीकर लेती है, उसी प्रकार पृथिवी भी अनेक प्रकार की औषधियां उत्पन्न करती है। जीवित पुरूष से केश लोम उत्पन्न होते हैं, वैसे ही ब्रह्म से समस्त विश्व उत्पन्न होता है। परब्रह्म परमात्मा अपने अन्दर सूक्ष्म रूप में विद्यमान जड़-चेतनरूप जगत् को सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न करते हैं और प्रलय काल में पुन: अपने अन्दर समाहित कर लेते हैं। पृथिवी जिस प्रकार बिना पक्षपात के अन्न, तृण, वृक्ष, लता आदि को उत्पन्न करती है उसी प्रकार जीव भी विभिन्न कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में उत्पन्न होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के 9वें अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं-

''सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।

ISSN 976-8645

कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।''[7]

हे अर्जुन! कल्पों के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृति में लीन होते हैं और कल्पों के आदि में उनको मैं पन: रचता हूँ।

ब्रह्माण्ड में विद्यमान सभी तत्त्व ब्रह्म का ही अभिव्यक्त रूप है। केनोपनिषद् में प्रकृति की शक्तियां अग्नि, वायु तथा इन्द्र का मानवीकरण किया गया है। ये शक्तियां यद्यपि पृथक् एवं स्वपर्याप्त दिखाई देती हैं किन्तु एक ब्रह्माण्डीय शक्ति के विभिन्न रूप मात्र हैं। अग्नि,वायु, इन्द्र, वरूण आदि देवों की अपनी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है, न ही शरीर में स्थित चक्षु, श्रोत्र आदि की शक्ति है अपितु सभी देव विजय, उल्लास तथा बल के लिये ब्रह्म पर निर्भर हैं। इस प्रकार उपनिषदों में प्रकृति के महत् ब्रह्माण्ड तथा मानव शरीर केलघु ब्रह्माण्ड के मध्य घनिष्ठ एकत्व को स्वीकार किया गया है। उपनिषदों ने भौतिक जगत् और आत्मा के जगत् का संश्लेषण करते हुए एक संतुलित एवं समग्र दृष्टि प्रदान की है जिससे मनुष्य व्यष्टि से समष्टि की ओर, लौकिक चिन्तन से अलौकिक की ओर तथा मानवता से दिव्यता की ओर अग्रसर होसके क्योंकि वर्तमान में ऐसा दृष्टिबोध विकसित करना आवश्यका है। आज सर्वत्र द्वैधीभाव व्याप्त है किन्तु सार्वभौमिक दृष्टि विकसित होने पर अपनी ही आत्मा के दर्शन होते हैं। इस दृष्टि का ज्ञान होने पर किसी के प्रति द्वेष, मोहका भाव नहीं रहता है। यह भावना सभी प्राणियों द्वारा स्वीकार किये जाने पर पारिस्थितिकीय असन्तुलन एवं प्रदूषण जैसी समस्याए स्वत: समाप्त हो जायेगी।

परमेश्वर एक ही है, ऋषियों की यह अनुभूति उपनिषदों में सर्वत्र वर्णित है। छान्दोग्योपनिषद् के ऋषि ने प्रतिलोमात्मक शैली में एकत्व की समपुष्टि करते हुए कहा है-''**एकोऽहं बहु स्याम्**''[8] एक ही मैं अनेक हो जाता हूँ। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी प्रारम्भ में ही उद्घोषणा करते हुए कहा है-''**ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्**''[9] छान्दोग्योपनिषद् में यही भाव व्यक्त करते हुए कहा गया है-''**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**''[10] माण्डूक्योपनिषद् में भी बताया है-''**सर्वं ह्येतद् ब्रह्म**''[11] सृष्टि में विद्यमान प्रत्येक तत्त्व आध्यात्मिक परमसत्ता के अंश को धारण करने के परिणामस्वरूप सभीमें एकत्व निहित है। सर्ग के आदि में एक सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही था, उसने विचार किया कि मैं प्रकट होकर बहुत हो जाऊँ-''**सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति**''[12] इस प्रकार परब्रह्म एक ही बहुत रूपों में हो गया। यह जो कुछ जड़-चेतन, स्थावर-जंगम जगत् है, वह परमात्मा का ही स्वरूप है। कठोपनिषद् में ऋषि कहते हैं कि जो मनुष्य अपने और ब्रह्म के सम्बन्ध को द्वैत भाव से देखता है अर्थात् एक स्थान पर ब्रह्म की सत्ता को और दूसरे स्थान पर अपनी सत्ता को मानता है, वह अज्ञानी पुरुष कभी

ISSN 976-8645

भी मृत्यु के बन्धन से मुक्त नहीं होता है। **''यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।।''**[13] एक ही परमेश्वर अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है जो एक ही परमेश्वर को नाना रूपों और नामों में प्रकाशित देखकर अज्ञानवश उसमें नानात्व देखता है, उसे मृत्यु के अधीन होना पड़ता है।

''मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।

मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।।''[14]

परमात्मा को शुद्धमन से इस प्रकार जाना जा सकता है कि इस जगत् में एकमात्र पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है। सब कुछ उसी का स्वरूप है उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जो मनुष्य स्वयं को ब्रह्म से भिन्न देखता है वह अज्ञानी पुरुष जन्म-मरण के दुःखों को प्राप्त होता है। जो जीवात्मा और परमात्मा में एकत्व को जान लेते हैं वे ही ब्रह्मप्राप्ति के आनन्द तथा परम शान्ति को प्राप्त करते हैं।

''एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।

तमात्मस्थ येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।

''नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।।''[15]

जो परमात्मा सब प्राणियों की अन्तरात्मा में स्थित है, जो अद्वितीय और सर्वथा स्वन्त्र है, सम्पूर्ण जगत् में सभी को अपने वश में रखता है, वह सर्वसमर्थ परमेश्वर अपने एक ही रूप को बहुत प्रकार का बना लेता है।

जो समस्त नित्य चेतन आत्माओं का भी नित्य चेतन आत्मा है, उस परमात्मा को जो मनुष्य अपने अन्दर देखते हैं, उन्हीं को सदा स्थिर रहने वाले परमात्मा प्राप्त होते हैं, दूसरों को नहीं। अतः मनुष्य को सम्पूर्ण प्राणियों में अपनी आत्मा को और आत्मा में सम्पूर्ण प्राणियों को ओतप्रोत देखना चाहिए। जो कुछ भी जड़-चेतन है वह ब्रह्म ही है और जो ब्रह्म है वह मैं हूँ अर्थात् मेरा ही स्वरूप है। इस प्रकार की वृत्ति धारण करने पर मनुष्य में अभूतपूर्व परिवर्तन होता है और अहंभाव पूर्णतः समाप्त हो जाता है, जिससे एक सार्वभौमिक दृष्टि विकसित होती है, जो वर्तमान पारिस्थितिकीय समस्याओं के समाधानार्थ उपयुक्त है।

औपनिषदिक महावाक्य मानव जीवन की सर्वतोमुखी उन्नति के आधार सूत्र हैं जिनके अध्ययन से मानव नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत बनता है तथा अनुकूल आचरण करता

ISSN 976-8645

है। सभी समस्याओं के समाधानार्थ औपनिषदिक महावाक्य व्यवहारिक व्यवस्था प्रदान करते हैं। ''अहं ब्रह्मास्मि''[16] की अनुभूति ''अयमात्मा ब्रह्म''[17] का बोध तथा ''तत्त्वमसि''[18] का दृढ़ उपदेश ही ''प्रज्ञानं ब्रह्म''[19] का चरम स्तर है। प्रज्ञान वह सीमा है जहाँ अस्मद्, युष्मद, तत् तथा इदं का भेद नहीं रहता है। वहाँ जो व्यष्टि के लिये है वही समष्टि के लिये है। इस प्रकार की भावना से जीवनयापन करने पर निश्चित रूप से सभी व्यक्ति जड़ तथा चेतन, पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पति, स्थावर-जङ्गम इन सभी में आत्मभाव को देखेंगे जिससे वर्तमान की सभी समस्याओं का समाधान संभव है।

अन्तटिप्पणी

1. ईशावास्योपनिषद् 6-7
2. वही, 16
3. मुण्डकोपनिषद् 2/2/11
4. बृहदारण्यकोपनिषद् 2/4/6
5. वही, 2/5/19
6. मुण्डकोपनिषद् 1/1/7
7. श्रीमद्भगवद्गीता 9/7
8. छान्दोग्योपनिषद् 6/2/3
9. बृहदारण्यकोपनिषद् 1/4/10
10. छान्दोग्योपनिषद् 3/14/1
11. माण्डूक्योपनिषद्, आगम प्रकरण 2
12. तैत्तिरीयोपनिषद् 2/1/10
13. कठोपनिषद् 2/1/10
14. कठोपनिषद् 2/1/11
15. कठोपनिषद् 2/2/13
16. बृहदारण्यकोपनिषद् 1/4/10
17. वही 2/5/19
18. छान्दोग्योपनिषद् 6/12/3
19. ऐतरेयोपनिषद् 3/1/3

ISSN 976-8645

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2066
2. ईशावास्योपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2061
3. ऐतरेयोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2060
4. कठोपनिषद, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2061
5. छान्दोग्योपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 1995
6. तैत्तिरीयोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2063
7. बृहदारण्यकोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 1995
8. माण्डूक्योपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2065
9. मुण्डकोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2066
10. श्रीरमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्यसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2000

A First EPQRST Journal-www.jahnavisanskritejournal.com, Issue-17th, Vol.-V, 14.1.14

ISSN 976-8645

The View of Sustainability and Inclusiveness in Prasthanatrayi

Anita Meena

Key words: *prasthânatrayî, sustainability, inclusiveness progress, holistic world view, human centric view, ecological view, vasudhaivakum tumbakm , ultimate reality, deep ecology, sallow ecology.*

This paper aims to discuss the holistic world view that lies in Sanskrit Literature, mainly in Upanic ads, Vedânta and Bhagavadgîtâ. It also discusses the similarity between Eastern mysticism which prevails million years ago and modern science in the context of sustainability and inclusiveness. Nature and self are the two sides of one and the same coin. It is the holistic world view that helps us to protect the nature and live a peaceful and integrated life. This holistic world view also comes from Indian intellectual tradition which teaches us the universal thought i.e. 'vaisudhaivakum umbakam'.

Introduction: *Prasthânatrayî* literally means "three points of departure." and they collectively refer to the *Upanic ad*, the *BhagavadGîtâ* and the *Brahma Sûtra*. These three texts are considered as authentic texts in Hindu philosophy. It consists of:

1. The *Upanish*, known as *Upadeœa prasthâna* (injunctive texts), and the *Úruti prasthâna* (the starting point of revelation)
2. The *Brahma sûtra*, known as *Nyâya prasthâna* or *Yukti prasthâna* (logical text)
3. The *Bhagavadgîtâ,* known as *Sâdhana prasthâna* (practical text), and the *Smri ti prasthâna* (the starting point of remembered tradition)

Prasthânatrayî vis-à-vis sustainable development:

Sustainability functions as inclusiveness and environmental sustainability. There are two world views predominantly occupies central place. They are holistic